UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182050

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·6 | H67V Accession No. G·H.2487

Author हिंदी |

Title वैकाली |

This book should be returned on or before the date last marked below.

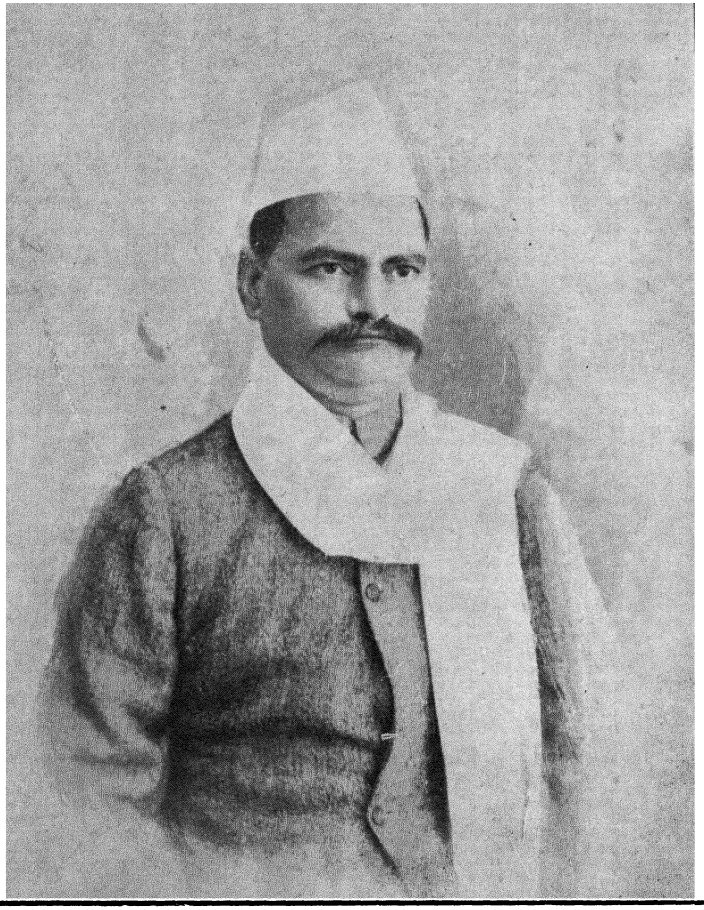

काव्य-जगत के महान् आचार्य
श्रीसनेहीजी

परम पूज्य गुरुवर

आचार्य

सनेहीजी

के

श्रीचरणों में

अनुक्रमणिका

शीर्षक	पृष्ठ	शीर्षक	पृष्ठ
१ वैकाली	१	१९ करुण-आकांक्षा ...	३९
२ प्रियतम के द्वार ...	३	२० आचार्य के निधन पर ...	४०
३ कोयल से	४	२१ त्रिवेणी से	४४
४ वञ्चित-विनय	६	२२ शान्ति	४६
५ पुकार	७	२३ ऋतुराज	४९
६ स्वप्न	८	२४ प्रातः कालिक संदेह ...	५१
७ मद्यपी से	९	२५ मेवाड़	५६
८ निराश्रय पथिक...	११	२६ बादल से	५८
९ आँसू	१२	२७ कमला के प्रति... ...	५९
१० अघोर	१४	२८ वन वन	६२
११ उद्बोधन	२०	२९ शायक	६३
१२ वियोग-क्षण	२२	३० द्विवेदी जी के शोक में ...	६४
१३ विजय-दशमी	२६	३१ ताड़ीवाला	६७
१४ कोकिल के बोल	२९	३२ मालिक ताड़ीशाला ...	७६
१५ अब और तब ..	३१	३३ प्यासा	८४
१६ शून्यता ...	३३	३४ मजदूर	९५
१७ विधि से विनय	३५	३५ हाहाकार	९७
१८ उच्छ्वासों से	३८		

प्रकाशक
शारदा सेवक सदन
लखनऊ.

मूल्य १॥)

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स, चारबाग,
लखनऊ.

वैकाली

वैकालो !
वैकाली !

सृष्ट-शरभ पर,
विस्तृत नभ पर,
रवि निष्प्रभ पर,

सब पर तुमने काली काली—
चादर अपनी डाली।

वैकाली !
वैकाली !

द्विप्रहर हर सा,
प्रलयङ्कर सा,
जब जब ज्वाला बरसा,

ऊष्मा से उत्तप्त जगत जब—
शीतलता को तरसा,

विफल मनोरथ का,
श्रम - श्लथ का,

आशा-ज्योत्स्ना कोमल-कर से तुमने तब तन परसा,
श्यामल-तन उज्ज्वल-मन भर कर स्नेह-सुलभ उर-लाली।

वैकाली !
वैकाली !

कितने कितने दीप सँजोए ?
कितने प्रहसित, कितने रोए ?
कितने पाए, कितने खोए ?
कितने जागे, कितने सोए ?

दृष्टि पसारे,
कार्य तुम्हारे,

तम-तंत्रालय से अपलक दृग,
देख रहे हैं अगणित तारे,

करते हैं रखवाली।
वैकाली !
वैकाली !

अगस्त १९३०।

प्रियतम के द्वार

आते आते द्वार तुम्हारे !
आते आते द्वार तुम्हारे !

उषा काल की अरुण-किरण से,
मन्द सुगन्धित मलय-पवन से,
द्विज दम्पतियों के गायन से,
यों ही दर्शन, स्पर्श, श्रवन से,

पाते हैं सुख प्यारे—
आते आते द्वार तुम्हारे !

अरुण कपोलों के विकास से,
प्रणयी भ्रमरों के प्रयास से,
सुमनों के मृदु-स्मित सुहास से,
आशा, शुभरति, नवोल्लास से,
मिलते न्यारे न्यारे—
आते आते द्वार तुम्हारे !

माघ सम्वत् १९७३ ।

कोयल से*

आ री कोयल,
आ री कोयल,
विरह-विहाग सुना री कोयल।
आ री कोयल,
आ री कोयल,
आ री तू मैं मिल कर गाएँ
राग बनें दोनों के क्रन्दन,
कोमल कण्ठ तार-नभ-गुञ्जित
हो झंकृत दिव, मुखरित नन्दन,
विह्वल वैश्वानर नर्तित हो,
तालें दे अचला-उर-स्पन्दन,
गानों से जीवों के प्राणों-
में रहने पाए दुख-द्वन्द्व न,
वह करुणा उपजा री कोयल!

---

* बन्दियों की मुक्ति के हेतु कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों के त्यागपत्र देने पर।

तीव्र तृषा की तापित तानें,
विषम विषाद - वेणु का वादन।
मूर्च्छित मन की महत् मूर्च्छना,
श्रुति हों शोक-स्वरों का साधन।
विकल वेदना प्रकटे उर की-
गीतों की भाषा बन अनुक्षण।
सीमित 'स-र-ग-म' को पहुँचाए—
उस असीम के पार पवन - स्वन,
यह उपाय अपना री कोयल!

चातक चाह भरा चिल्लाता,
बुलबुल बिलखा करती किस विधि!
सुन विदीर्ण हो गया अवनि - उर,
रो रो खारा बना पयोनिधि।
विरह - वन्दियों के प्रति फिर भी,
है वैरी विधि की यह दुर्विधि।
खाता तरस नहीं लौटाता, दीन-
दुखी-जन की छीनी निधि।
तू भी शोर मचा री कोयल!

आज प्रलय की विप्लव - लय से-
ध्वनि अवरोहित आरोहित कर,
आन्दोलित हो स्यात् फट पड़े-
पाषाणों का पर्वत पामर,
फिर नीरसा रसा सरसा हो,
बहे दयार्द्रित निर्झर झर-झर।
जिससे थोड़ी शान्ति पा सके,
जगत यातना - ज्वाला - जर्जर।
सृष्टि सुखी हो सारी कोयल!

वञ्चित-विनय

अरे सुगन्धी ! यों न सुगन्धित कर, मेरा कण-कण इस भाँति।
सुखद सुमन की माल तू, कहाँ मैं सूखे काँटों की पाँति !

सरस सलोने, इस छूँछे को,
यों मत नव-रस से भर तू।
नीरस-हृदय-प्रदेश-प्रवाहित-
मत सनेह-सरिता कर तू।

उर में धक-धक-धक जलता है, जाने कौन अनल उद्भ्रान्त,
इसमें ही मेरा जीवन है, जीवन-जीवन परम प्रशान्त।

शत-शत खण्ड मलिन मेरा-
अञ्चल न उड़ाकर खेला कर।
मुझ निकृष्ट-तम की, अवहेलित-
की, तू भी अवहेला कर।

प्राणोन्मत्तकरी अनहद-वंशी से यों मत गाया कर।
वियत्-प्रान्त से जगत-विताड़ित मुझको यों न बुलाया कर।

प्रकृति-प्रवाह-पतित जाने-क्यों-
बहता हूँ, बह जाने दे।
वञ्चित किया सभी विधि तो-
अब वञ्चित ही रह जाने दे।

कृष्णाष्टमी १९८१।

पुकार

अवरुद्ध कण्ठ की यह पुकार !
उस तक पहुँचाएगा अवश्य ऊँचे उर का बेतार-तार।
इस तन की संवलता लेकर,
इस मन की व्याकुलता लेकर,
जीवन की विह्वलता लेकर,
श्वासोच्छ्वासों के पर पसार,
पहुँचेगी पिक-सी वियत पार,
अवरुद्ध कण्ठ की यह पुकार।
ध्वनि-वर्द्धक करुणा-कल-प्रवेश-
करके, उस तक मेरा सँदेश,
हाँ, ले जाएगी दूर देश,
फिर प्रति नर, प्रति घर, द्वार द्वार,
गुंजरित करेगी दुखोद्गार,
अवरुद्ध कण्ठ की यह पुकार।
तब तो अजान होगा सुजान,
भरदेगी दोनों बधिर कान,
करदेगी विगलित कठिन प्रान,
हर लेगी सारा शोक भार,
निश्चय मुझको लेगी उबार,
अवरुद्ध कण्ठ की यह पुकार।

५ सितम्बर ३७।

स्वप्न

अरे तुम उज्ज्वल शशि से कौन ?
अङ्क - स्थित आशा कुहूकिनी के जब तुम आते हो उर में ,
अपने मायामय दर्पण में जग दिखला जाते हो उर में ।
बन के उपवन खिल-खिल पड़ते,
विकच पद्म हो हिल-हिल पड़ते ।
अस्फुट कलिका, फुल्ल कुसुम फिर-
मूर्च्छित सौरभ हो उड़ जाते ।
मेरे लोभी मन - मधुकर को,
ख़ूब रिझाते, ख़ूब खिझाते ।
लिए तूलिकाएँ किरणों की छवियाँ चित्र विचित्र बनाते,
मेरे इस मस्तिष्क - पटल पर चित्रकार हो मौन ।
अरे तुम उज्ज्वल शशि से कौन ?
जैसे निद्रित हो जाने पर, होते सृजन विनाश अनेकों,
जाग्रत भी वैसे ही लखता संसृति-ह्रास, विकास अनेकों ।
एक मुक्त है, तो इक धृत है,
इक प्रविष्ट है, एक निसृत है ।
कोई जीवित, कोई मृत है,
कहीं हलाहल, कहीं अमृत है ।
अति अद्भुत यह क्रीड़ास्थल है समझ पा रहा - यों न !
अरे तुम उज्ज्वल शशि से कौन ?

कार्तिकी पूर्णिमा स० १९७५ ।

मद्यपी से

यह तेरा मधुपान मद्यपी ! यह कैसा मधुपान !
सप्त समुद्र शोष कर भी तेरे हैं प्यासे प्रान !

आशा - अब्धि समेटे बैठा,
अति मतवाला मन है,
बुद्धि - वीचि - संकुलित-
वासना - वारिधि किए मगन है,

सुखद - स्पर्श विद्युत् - अर्णव-
लय किए रोम अगणन हैं,
नासा - रन्ध्र उभय मिल पीते–
नित्य पयोधि पवन हैं,

मधुर - मधुर स्वन - सागर-
करते पान सदैव श्रवन हैं,
कर बैठे सौंदर्य - सिन्धु
आचमन अगस्त्य - नयन हैं,

सुरस नाम - सरस्वत ये
रसनाधर पीते क्षण - क्षण हैं,
तो भी सरस नहीं कर पाते-
नीरस जीवन - कण हैं,

ज्यों ज्यों पीता जाता त्यों-
त्यों बढ़ती अधिक पिपासा।
अभिलाषामय जग में होती
पूर्ण नहीं अभिलाषा।

× × ×

तृष्णे! तृष्णे!! है विराट तू यद्यपि अलख अतन है!
हाय! पिपासे! नहीं पिपासा है तू पागलपन है!

जनवरी १६३१।

निराश्रय पथिक

घन झर झर झर बरसे।
मन रह रह कर तरसे।

नभ पर छा कर नील घटाएँ,
यों मत उर तम - पूर्ण बनाएँ,
पथ है विपथ अकथ बाधाएँ,
सन सन चलतीं तीव्र हवाएँ,
आशा - दीप जलाए लख - पथ,
चढ़कर विफल मनोरथ के रथ,
दुस्साहसी समेटे साहस,
निकल पड़ा घर से।
घन झर झर झर बरसे।

खोज लगाना, महा कठिन है,
देश अजाना, महा कठिन है,
ठीक - ठिकाना, महा कठिन है,
प्रियतम पाना, महा कठिन है,
किससे पूछे ? कौन बताए ?
ज्ञात नहीं किस द्वारे जाए ?
आश्रयहीन अनन्त काल का,
किसके पग परसे ?
घन झर झर झर बरसे।

न्यू सैंट्रल जेल अलीपुर बंगाल
श्रावणी, १९२२।

आँसू

जिस हृदय - हिमाचल को विचलित-
कर सका न विपदा - वज्रपात।
होकर परास्त दुख, दैन्य, सैन्य सह-
विमुख हुए, कर तीव्र घात।

पद - दलित न कर पाए जिसको,
अगणित निशि, दिन, संध्या, प्रभात।
संसृति का सूनापन जिसको-
कर सका न अब तक आत्मसात्।
उस से ही बिलखा फूट - फूट
यह गङ्ग - यमुन - जल का प्रपात।
बतलाता हूँ अपने महान्—
नयनाश्रु - विन्दु की तुच्छ बात।
नभ क्या है? मेरा हृदय शून्य,
फैला अतिशय सहृदय विशाल।
आहों से उत्थित धूम्र - राशि-
बन गयी भयानक जलद - जाल।
गर्ज्जन क्या है? मेरी खिन्ना करुणा-
का हाहा — रव कराल।
विद्युत् क्या? ज्वालामुखी शोक-
फट पड़ा, उसी की तनिक ज्वाल।
वर्षा है, मेरी अश्रु - धार
पावस है, मेरा विरह - काल।
किञ्चित - किञ्चित इसका रहस्य
जानता एक चातक विहाल।

अलीपुर न्यू सेन्ट्रल जेल,
वर्षा, सन् १९२१।

अघोर

पावस - निशीथ नभ - मण्डल पर-
झुक पड़ा घना जब अन्धकार।
"तड़ तड़" विद्युत तड़पी "घड़-घड़-
घड़" कर घन बरसा वारि - धार।

तारक लुककायित हैं, न सुधाकर
बरसाता है सुधा - स्रोत,
पाताल - लोक क्या भूतल है
सारा द्यु-लोक तम - ओत - प्रोत।
हैं हुए नवग्रह जा करके,
निज - निज गृह में सुख से सुषुप्त,
कुछ ज्ञात नहीं है कहाँ विभाकर·
पूर्णरूप से विभा - लुप्त ?
वे लक्ष - लक्ष योजन प्रकाश-
ज्योतिष्कराशि अति अहम्मन्य-
देने वाले हैं कौन लोक - गत
बेचारे तारक नगण्य ?
हाँ, किसी - किसी क्षण पर अवश्य
क्षणदा जल जल कर बार बार।
निष्ठुर जग के काले मुख को
जाती उज्ज्वल कर बार बार।
झञ्झा का है अति प्रबल वेग-
कर तार - स्वरों में चीत्कार,
सुन पड़ती है कुछ दूर दूर-
श्वानों की अति कर्कश पुकार।
गत - नीड़ हुए हैं विहँग - वृन्द-
गिरते - पड़ते व्याकुल महान।
करते फिरते क्रन्दन अथोर,
खोजते चतुर्दिक त्रान - स्थान।
आंखें काढ़े अति तीव्र - धार,
वन्याप्लुत काली नदी घोर।
कर हहर हहर हर - हर - हर - हर-
बहती जाती ले ले हिलोर।

तटवर्ती बट का कुञ्ज, जहाँ-
सूझता न जग का ओर छोर,
धक धक जलती है चिता - ज्वाल,
करते उलूक हैं विकट शोर।
शव पर हो पद्मासनासीन,
उच्चारण करता श्रुति अघोर,
यह कौन अरे ! है सिद्धि हेतु,
साधना - मग्न आनँद - विभोर ?
बिखरे हैं तम से घने केश,
जिसके दृग हैं अङ्गार रूप,
तन चिता - भस्म भूषण जिसका-
नर - पंजरास्थि है हार रूप,
तृषिताधर जिसके फड़क रहे,
है रक्त - पूर्ण कर नर - कपाल,
शव - मांस गलित सम्मुख, करने
कवलित खुलता कुछ मुख कराल।
नर्तित हैं दानव, भूत, प्रेत,
वैताल दे रहे विकट - ताल,
अति अनति दूर हँसती खिल-खिल
खोपड़ी पड़ी यह देख हाल।
भैरव - रव का भी हृदय भेद,
नीरवता को कर कम्पमान,
गूँजा अदृश्य कर्कश स्वर में-
तुम कौन अरे ! साधक महान ?
रुक गया नदी का तीव्र वेग—
पशु - पक्षी सब हो गए शान्त,
"साधक महान तुम कौन अरे !"
फिर गूँज उठा, वह क्षुद्र प्रान्त।

कुछ भ्रू कुञ्चित कर, मुद्रित - दृग-
बोला वह साधक सह विवेक —
"हूँ दलित, पतित, पीड़ित, जग का-
ठुकराया मैं नर तुच्छ एक!
जिसके दिक् जग देखता नहीं,
जिसने देखा है नहीं स्नेह,
प्राणों ने पाई नहीं प्रीति-
जिसकी दुलार से रहित देह।
संतप्त एक मैं हूँ, जिसको-
तरु ने भी की छाया न दान,
विष - सिन्धु अमृत का बिन्दु-
जिसे बन गया इन्दु भी अंशुमान।
मुँह फेर फेर संध्या जिसका,
करती रहती थी रक्त - पात,
काली कराल थी जिसे रात,
जिस पर हँसती थी उषा प्रात।
हँसते थे जिस पर वनज फूल,
जिसके आगे थे अड़े शूल,
पग पग रोड़े अटके अनेक,
जिसने मग पाए भरे भूल।
दर - दर फिर आदरहीन हाय!
स्थिर होने का पाया न स्थान,
जिससे कहने कुछ बढ़ा बात-
कर लिए उसी ने बन्द कान।
सुख का भी मुख देखा न, औ, न
दुख - हन्ता ही दुख मिला अन्य,
हँसने को गृह तो क्या, न कभी
रोने को भी पाया अरण्य।

इस दिक् से उस दिक् तक न एक
पाया स्व-व्यथा से व्यथित जीव,
श्रद्धा से जिसके गया पास
उसने ही कर ली वक्र ग्रीव।
"दुर्दुर-दुर्दुर" ही सुने शब्द,
सुन सके प्रेम - वाणी न कान,
निष्ठुर अतीत, दुर्दिन भविष्य,
जिसको विपत्ति है वर्तमान।
मेरा उर निर्मल मुकुर आज,
आघातों से है चूर - चूर,
मानव रूपी दानव समाज,
चल हट, चल हट हो दूर, दूर।
यह मृग - मरीचिका - आकांक्षा
मेरे उर - अन्तर की अतृप्ति,
सुस्पंदित मेरी चित्त - वृत्ति
जाने पाएगी कहाँ तृप्ति ?
काली कराल कामना, मुझे-
घेरे फिरती हैं, आधि - व्याधि,
इस हेतु आज इनको आया-
हूँ देने मरघट में समाधि।
जग के क्रूरों के अन्न - कौर-
हो रहे आज मुझको हराम,
उनके शव का ही मांस - भक्ष्य
मेरा है, मैं हूँ विगत - काम,
मुझको क्या करना दिव्य वस्त्र,
उल्लङ्ग - रूप मैं परमहंस,
उन कुटिलों की है चिता - भस्म
मेरी विभूति, मैं हूँ नृशंस।

शव - सिर - फल सरि - जल भक्ष्य-
पेय, है कपालास्थि ही पान-पात्र,
परिवार, कुटुम्बी और गेह, है-
केवल मेरी देह - मात्र।
मैं घृणारहित, वासनारहित,
मुझको न द्वेष, मुझको न राग,
"हर हर प्रलयङ्कर" मंत्र एक—
है मेरे जीवन का विहाग।
यह विश्व - स्थित वैभव विशाल,
मुझको दे मत भिक्षा अवश्य।
"नर को नर तो समझे" मुझसे-
ले ले इतनी शिक्षा अवश्य।
पहले का परिचित शब्द हुआ,
मिट गई भ्रान्ति ! मिट गई भ्रान्ति !
समझा, मैं समझा, जीवन का—
है लक्ष्य एक ही, क्रान्ति ! क्रान्ति !

सितम्बर, १९३७।

उद्बोधन*

मन्मथ जग रे !
मन्मथ जग रे !

हर-जारित स्वदेह-रज-शय्या-
तज विदेह-मग लग रे !

---

* रवि ठाकुर की भाव-भित्ति पर ।

होकर अतन सुतन उत्पादक,
मदन मद-रहित मद से मादक
आकुल उर-वीणा के वादक,
मत रह विलग विलग रे।

स्वमरण से अमरत्व दान कर,
दुख से सुख का स्वत्व दान कर,
अ-विरह मिलन-महत्व दान कर,
यौवन अजर सजग रे!

अगम ज्ञान का नूतन तन धर,
सतत ध्यान का नूतन तन धर,
प्रमद-प्रान का नूतन तन धर,
तक माधव का मग रे!

जीत वियोग - वेदना - नाका,
बाँध विश्व में अपना शाका,
फहरा गृह गृह प्रणय-पताका,
कर मन - मथन त्रिजग रे।

मन्मथ जग रे!
मन्मथ जग रे!

वसन्त, सन् १९२२।

वियोग-क्षण

तेरे वियोग - क्षण रहे बीत,
बनकर भविष्य, आगम, अतीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत,

बन वसन्त कुसुमित हो वन वन,
ग्रीष्म तपन हो, फिर सावन-घन,
शरद - सुधाकर स्रवित - सुधा - कण,
मन्मथ - शर हन कर मन उन्मन,
जब से तू बिछुड़ा जीवन-धन,
निशि-दिन-लघु, विराट, ज्यों वामन,
त्रिविध समीर प्रवाहित सन-सन,
करते परम प्रकम्पित हैं तन,

हो हो कर हिम, शिशिर, शीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

फिर फिर आते जाते रहते,
कुछ प्राण - स्पन्दन में कहते,
नयन मेघ से उमड़ बरस पड़ते,
फिर उर - वसुधा - पर बहते,

तटिनी होकर, कल - कल स्वर में,
जाने फिर गाते कौन गीत?
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

(३)

कर शशि तारा का सौख्य न्यून,
बन तरुण अरुण पाटल - प्रसून,
जग को सुवर्ण दे अयुत भार,
ले लेते मधु सौरभ अपार,

जल, थल, नभचारी, वायुयान,
कर करके बोझिल प्रति विहान,
भव में कर शोभा - सुख - प्रसार,
ले जाते क्षितिज - समुद्र - पार,

जग - प्राणों को कर दास क्रीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

(४)

हो वियदोपरि मध्याह्न - काल,
नव - वधू - सृष्टि को कर विहाल,
उसका सुहाग - सिंदूर लाल,
रवि - क्रूर करों से पोंछ हाल,
कर देते विधुरा शून्य - भाल,
फिर उस पर श्वेत दुकूल डाल,
निज अग्नि - नेत्र खोले कराल,
बन रुद्र जलाते विरह - ज्वाल,

जड़ - चेतन को कर त्रस्त, भीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

(५)

कमलिनि का कोमल मुख मलीन-
कर, विरहीजन को दीन हीन-
कर धूम्र - देह का अन्तराल,
हो मन्दभास दीधित निढाल,

जो पूर्व - समय में किया भेंट,
सायं - सुवर्ण अपना समेट,
अस्ताचल के ही सानु सानु,
छिप जाते लेकर भानु भानु,

फिर हो जाता है ध्वान्त स्फीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

(६)

ले अगणित विफल, सफल, प्रयास,
ले अगणित क्रन्दन और हास,
सँग दुःस्वप्नों का लोक लिए,
घनतम कुछ कुछ आलोक लिए,
आती निशि बिछुड़े कोक लिए,
सन्तप्त उरों का शोक लिए,
बिखरा हिम - आँसू यत्र तत्र,
रोती, कर अगणित दृग - नक्षत्र,

पल पल होते युग - युग प्रतीत,
तेरे वियोग - क्षण रहे बीत।

बरेली जेल
सन् ३०।

विजय-दशमी

महा विजय के महामहोत्सव के
हे दिवस - स्तूप,

परम पराजय - कुहू तुम्हारा ही
तो है अपरूप,

तुम्हारे ही हाथों से हाय !
हुए निर्मित प्रसाद - प्रासाद,
बन गए खँडहर विषम विषाद,

राव से रङ्क, रङ्क से भूप।
क्या यही है तव सत्य स्वरूप ?
महोत्सव के हे दिवस - स्तूप !

इसको सुखमय, उसको दुखमय
हो देते सन्ताप,

बलवानों के "वरमृत्रूहि", बलहीनों-
के अभिशाप,

तुम्हीं बन जाते बिना प्रयास-
जगत के यौवन के मधुमास,
पुनः पतझड़ हो विकृत विनाश,

कभी तो मृदुल गुलाबी गाल।
कभी सूखे कण्टक कङ्काल।

सुखद स्वर्ण - युग के उज्ज्वल शशि-
रजत - रश्मि सी शान्ति,

दुखद लौह-युग-राहु-तमिस्रा-उथल-
पुथल उत्क्रान्ति,

विभव - वारिधि-विलास-जल-यान,

पराक्रम प्रभुता के पतवार,
भग्न होते विमग्न मँझधार,

त्रास त्रासित तरुणों के त्रान।
तीव्र तूफान, तीव्र तूफान।

आवो, आवो, आज राम, रावण के-
हृदयोद्गार

विजय - हार दो, या प्रहार करके-
कर दो संहार,

लटकते हैं त्रिशंकु से हाय!
न है इहलोक, न है परलोक!
शोक! कायर - जीवन पर शोक!

लक्ष्य तक पहुँचें, या हों चार।
मचा दें जिससे हाहाकार।

विजया,
सं० १९७३।

कोकिल के बोल

कोकिल के सुमधुर बोल ।
कोकिल के सुमधुर बोल ।

वीणा धारिणि वाणी - वर से,
मायिक - मोहक मन्त्र - प्रवर से,
मन्मथ - कारक मन्मथ - शर से,

विहँगावलि कल - जल - परिपूरित वन - वारिधि - उल्लोल।

कोकिल के सुमधुर बोल।
कोकिल के सुमधुर बोल।

गाते गीत कलित किन्नर से,
शुभ स्वर्गीय दूत सुन्दर से,
वेणु बजाते नटनागर से,

रूप रहित, पर रूप - राशि - खनि - रत्नों से अनमोल।

कोकिल के सुमधुर बोल।
कोकिल के सुमधुर बोल।

बौरा कर रसाल - शिर - कम्पन,
पुलकित कर कदम्ब - तरु का तन,
ध्वनित बना लतिका - गृह - प्राङ्गन,

किलकारी भरते लघु शिशु से करते सुखद कलोल।

कोकिल के सुमधुर बोल।
कोकिल के सुमधुर बोल।

चढ़कर द्रुत - गति - पवन - यान पर,
अति विस्तृत अनन्त - पथ होकर,
प्रियतम से आते मेरे घर,

मूर्च्छित, मृत प्राणों में जाते मदिर अमृत रस घोल।

कोकिल के सुमधुर बोल।
कोकिल के सुमधुर बोल।

वसन्त १९२६।

अब और तब

अब तो विकट विरक्ति हुए हो,
थे अनुरक्ति हृदय की तब थे।
अब निर्दयता हो निर्दय की,
जब थे दृष्टि सदय की तब थे।

होकर उपल बरसते हो अब,
द्रवित तरल जब जल थे तब थे।
जो न नमे वह काष्ठ हुए अब,
मोम समान सरल थे तब थे।

अब तो हो रवि - रौद्र, उषा की-
जब मुसकान मधुर थे तब थे।
अब तरुशुष्क निराशा के हो,
आशा के अङ्कुर थे तब थे।

अब चित में चुभते कण्टक हो,
पुष्प मनोहर जब थे तब थे।
अब तो प्राणान्तक बन बैठे,
प्रिय प्राणेश्वर जब थे तब थे।

अब भव - भयदायक भैरव हो,
जब भव - भय - भंजन थे तब थे।
अब निर्धनता हो निर्धन की,
निर्धन के जब धन थे तब थे।

अब पग वामन के कुसमय हो,
क्षणिक सुवर्ण - समय थे तब थे।
अब खूँटी हो हार निगलते,
द्रौपदि - वस्त्र - निचय थे तब थे।

अब कर्कश वारिद - गर्ज्जन हो,
वीणा के मृदु स्वर थे तब थे।
अब हो आप कठिनता के गिरि,
जब करुणा - सागर थे तब थे।

दिसम्बर १९१७।

शून्यता

मानो सब जग सूना है !
मानो सब जग सूना है !

लय होती पृथ्वी जल में,
लय होता वारि अनल में,
वह अग्नि महान अनिल में,
फिर वायु गगन मण्डल में,

महत्तत्व में नभ लय होता, वह स्वप्रकृति चंचल में,
चल परिवर्तन, पुरुष अपरिवर्तन में सदा अचल में,
अगुण सगुण का भेद न रहता परे परे अञ्चल में,

सुख में दुख, दुख में सुख क्षय हों,
मिलित पराजय और विजय हों,
एक रूप में सृजन, प्रलय हों,
तुम हम में हम तुम में लय हों,

आनँद है अद्वैत, शून्य सा द्वैत दुसह दूना है।

मानो सब जग सूना है!
मानो सब जग सूना है!

जनवरी
१९३२।

विधि से विनय

विश्व सृज, हे विधि, पूर्व निधन !
बना दे मुझको शरद गगन।

चन्द्र - चन्द्रिका - मध्य डुबोकर,
विश्व - विषाद - कालिमा धोकर,
तन से, मन से निर्म्मल होकर,
विरही हृदयों के दुख खोकर,
अगणित तारक - दीप सँजोकर,

विपथ - भ्रमित पथिकों को-
सत्पथ दिखलाऊँ क्षण क्षण ।
बना दे मुझको शरद गगन ।

विश्व सृज हे विधि, पूर्व निधन !
मुझे रच पावस का नवघन ।

कर्ता सरस सकल नीरस थल,
कृषक - कृष्ण - बाह्यान्तर - उज्ज्वल,
आद्योष्मा, परिणाम सुशीतल,
जगत - जीव - जीवन - जीवन - फल,
पपिहा के प्राणों का सम्बल ।

वज्रह हो, दुर्वृत्त - वृत्र पर,
करूँ पुहुमि पालन ।
मुझे रच पावस का नवघन ।

विश्व सृज, हे विधि, पूर्व निधन !
मुझे कर बालक विकच वदन ।

सत्य, शिवं, सुन्दर कोमल तन,
हो जिससे वात्सल्य - प्रस्रवन,
दीन पिता का श्रान्ति - विमोचन,
अपनी निधनी जननी का धन,
मचल मचल, पाए शत चुंबन,

ज्ञान, विवेक, न मुझे-
चाहिए मतवाला यौवन ।
मुझे कर बालक विकच वदन ।

विश्व सृज, हे विधि, पूर्व निधन !
मुझे कर कोकिल - कल कूजन ।

माधव - नाम पुकारूँ अनुक्षण,
करूँ प्रति-ध्वनित प्रान्तर, पत्तन,
ले सँग सौरभ सहित समीरण,
नभ - नर्तित विचरूँ वन, उपवन,
पुलकित कर पृथ्वी का कण कण,

हर्षामर्ष भुला दूँ भव के–
कट जाएँ बन्धन ।
मुझे कर कोकिल - कल कूजन ।

विश्व सृज हे विधि, पूर्व निधन !
बना पागल का पागलपन ।

भेदभाव के थोक भुला दूँ ।
यह भौतिक भूलोक भुला दूँ ।
अ - प्रत्यक्ष परलोक भुला दूँ ।
शूली की भी नोक भुला दूँ ।
संसृति का सब शोक भुला दूँ ।

उन्मन शून्य दृष्टि स्थिर पाऊँ–
प्रियतम के दर्शन ।
बना पागल का पागलपन ।

शरत्
१६२२ ।

उच्छ्वासों से

ऐ उर के जलते उच्छ्वासो जग को ज्वलदाङ्गार बना दो,
क्लान्त स्वरों को, शान्त स्वरों को, सबको हाहाकार बना दो,
सप्त लोक क्या, भुवन चतुर्दश को, फिरकी सा घूर्णित कर दो,
गिरि सुमेरु के मेरुदण्ड को कुलिश करों से चूर्णित कर दो,
शूर, क्रूर, इन दोनों ही को रण-शय्या पर शीघ्र सुला दो,
इनकी माँ, बेटी, बहिनों, वधुओं को हाहा - रुदन रुला दो,
मानव - दानव - दल में घुसकर बन बन तीर कलेजे छेदो,
छूरी बनकर छाती छेदो, भाले बन कर भेजे भेदो,
कोई भी बेलाग बचे मत, प्रलयङ्कर हो लाग लगा दो,
भस्मपि शेष रहे मत वैभव के भव की, वह आग लगा दो,
उठा, उठा कर आज पदस्थों को पटको, पददलित बना दो,
थल को जल, जल अग्नि, अग्नि को वायु, वायु अविचलित बना दो,
उससे शून्य, शून्य नभ को फिर, कर भैरव-रव तीव्र हिला दो,
इससे मिट्टी न बन सके फिर, मिट्टी में इस भाँति मिला दो,
दुख मत रक्खो, सुख मत रक्खो, संसृति की कुछ बात न रक्खो,
साँझ न रक्खो, प्रात न रक्खो, ये दुर्दिन दिन रात न रक्खो,

(बरहमपुर जेल बङ्गाल)
ग्रीष्म १९३१ ।

करुण-आकांक्षा

(अपनी जन्मभूमि के खँडहर पर से)

मेरे सुख - सपने फिर आएँ।
मेरे सुख - सपने फिर आएँ।

यह उजाड़ फिर शुभ्र सदन हो,
वही प्रकोष्ठ, वही प्राङ्गन हो,
उर - चित्राङ्कित गृह-कण कण हो,
वातावरण वही हो जाए,
प्राप्त वही फिर बालकपन हो,

जैसे थे वैसे पा जाऊँ,
नूतन बिना बने फिर आएँ।
मेरे सुख - सपने फिर आएँ।

निशि, दिन, जो रहते थे घेरे,
आशा और भरोसा मेरे,
दुलराते थे साँझ सवेरे,
मन के महल खजाने, वे—
सब माता, पिता, घनिष्ठ घनेरे,

खोये हुए, अभागे निर्धन के—
धन, वे अपने फिर आएँ।
मेरे सुख - सपने फिर आएँ।

नवरात्र सं० १९७७

आचाम के निधन पर

स्वर्ण उषा का लूटा किसने-
रजनी के हैं रत्न चुराए ?
सूर्य सुधाकर, तारे सारे
किसने हाय ! त्रिशङ्कु बनाए ?

कौन रसा को सुमन-स्मित से,
मधु-ऋतु में है नित्य हँसाता?
अम्बर को अम्बुद-आँसू से-
पावस में है कौन रुलाता?
एक विहँग के प्यासे प्रानों-
को दे वारिद-वारि-पिपासा।
एक विहँग को दे चिनगारी-
चुगकर चन्द्र-मिलन की आशा।
दिन का हास्य, रुदन रजनी का-
दे नभ को, कर उज्ज्वल, नीला,
दे सागर की लोल लहरियों-
को उत्थान, पतन की लीला।
राका-शशि-मुख पर कालिख दे,
नीचे उडुगण उच्च गिराए।
विश्व-प्रकाशित करने वाले-
रवि में अगणित दाग लगाए।
सुन्दर स्वर्णिम-स्वप्न दिखाकर,
आशा का उद्यान लगाकर।
पृथ्वी पर आरोपित करके-
दिव से कल्पद्रुम को लाकर।
पूर्ति हमारी आकाँक्षाओं-
की करने का अभिनय रचकर।
सुख दिखलाकर, दुख देता है-
कौन अलख? आँखों से बचकर।

× × ×

मैं दृग मुद्रित कर लेता यदि-
होती केवल दर्श पिपासा।

विरह - वह्नि निर्वापित होती,
नित्य निकलती शीतल श्वासा।
रहता मौन प्रलाप न करता-
मैं टूटी फूटी भाषा से।
यों न निराशा लेकर रोता,
होता मैं हर्षित आशा से।
धीरज - बाँध बाँध, अवरुद्धा-
अभी अश्रु - धारा कर लेता।
कहीं दैव निर्दय मिल जाता-
तो वारा न्यारा कर लेता-
अरे ! राष्ट्र भाषा निर्माता-
पूज्याचार्य महान द्विवेदी !
विद्यमान हैं नहीं जगत में-
क्या हम सबके प्राण द्विवेदी !
मुदित बनाने को मन मेरा,
सरस कथाएँ जो कहते थे।
छोटों के छोटे कार्यों पर,
प्रोत्साहन देते रहते थे।
सीख रहा था इङ्गित से मैं-
चलना जिनकी तर्जनि धरके।
पीछे थे जो, गिरते पड़ते-
शिशु को आगे आगे करके।
एक अजाने पथ में सहसा-
छोड़ गए विश्वास नहीं है !
देव अमर मर सकते हैं ! ये-
क्या है ? यदि परिहास नहीं है ?
मैं तो आँखें मूँदे मूँदे-
दर्श कर रहा अब भी उनके।

प्रभु के से पावन पाँवों का—
स्पर्श कर रहा अब भी उनके।
नत शिर, हो आकाश - स्पर्शी-
जब लेकर पद - रज उठता है।
"चिरजीवी होवो" परिचित स्वर
इन कानों में बज उठता है।
कृपा - दृष्टि के निर्झर झर्झर-
वही स्रवित होते हैं मुझ पर।
आश्वासन - कर की छाया कर,
दया - द्रवित होते हैं मुझ पर।

× × ×

सन्ध्या और उषा दोनों ही,
एक अलक्ष्य जगत तक जातीं।
अपने अपने नियत समय पर,
हँसती हँसती हैं फिर आतीं।
नभ - नीलाञ्चल में दो बालक-
जो दिन रात चला करते हैं।
लुक छिपकर खेला करते हैं,
फिर सम्मुख निकला करते हैं।
ऐसे ही वह आर्य्य हमारे,
लुक छिप कर फिर आजाएँगे।
अभय - हस्त शिर पर फेरेंगे,
प्यार करेंगे, दुलराएँगे।

आचार्य के
निधन पर।

त्रिवेणी से

प्रेयसी किस देव की तुम हरण को भव - ताप ?
पतित हो भू पर हुई, पा कौन सा अभिशाप ?
हे सती ! क्या प्राप्ति को शंकर - विरह से त्रान ?
गगन से कूदीं, विसर्जन - हेतु अपने प्रान ?
हो रही हो यों विलुण्ठित धूलि में क्यों हाय ?
क्या समाया चाहतीं भू - गर्भ में निरुपाय ?
मग्न कर मन - महल, भग्न सुकल्पना - प्रासाद ।
विश्व - प्लावित कर रहा, तव स्रोत रूप विषाद ।
वीचि - संकुल मच रहा है विपुल हाहाकार ।
क्यों तुम्हारे हृदय में है, उथल पुथल अपार ?

शोक - सम्बर्द्धित किए, हो द्रवित परहित जन्य।
हर रही हो अन्य का भी दुरित - दुख तुम धन्य !
हो रही हो अश्रु - विगलित - वपुष रो रो मौन,
निठुर विश्व - अरण्य में इसको सुनेगा कौन ?
उमड़ते उर में लिए अतुलित व्यथा का भार -
ले, बही जातीं किधर सावेग तोड़ करार ?
ढूँढ़ती फिरती किसे हो वन, नगर, गिरि, ग्राम ?
किस अपरिचित देश में है, तव मनोहर श्याम ?
हो लिए अति दुःख - अन्तर में - अनन्त अशान्ति,
किन्तु विरही विश्व को हो वितरती सुख, शान्ति।
कमल - कैरव - नेत्र अगणित खोलकर दिन रात।
ताकतीं नभ ओर किसका पथ, विपथ, अज्ञात ?
कूल - कर - प्रसरित किए क्यों रह गईं मन मार ?
खो दिया पाकर कहो, किस प्रेम - धन का प्यार ?
बुद्बुदों मिस तरल सरले, हृदय खोले हाय !
हो किसे दिखला रही उर के फफोले हाय !
वेदना, विरहाग्नि, व्याकुलता - विलीन विचित्र,
दग्ध प्राणों में तुम्हारे है प्रयाग पवित्र।

× × × ×

दुखित का संगम दुखित जन के लिए है मुक्ति,
दुख - जनित सुख हो अमिट आवो, करें वह युक्ति।

त्रिवेणी-तट
संवत्
१९७२

शान्ति

छान डाला है सारी दुनिया को,
हर तरफ और ही नजारा है।
खोज मारा नहीं मिली, जाने,
शान्ति का किसने खोज मारा है।

उद्भिजों में है एक सङ्घर्षण,
खार आपस में खाए रहते हैं।
एक की जम के एक छाती पर,
जम से आसन जमाए रहते हैं।

मूक हैं, बेजबाँ हैं, शान्त नहीं,
खाके पत्तों को, घास को चरके।
सींग वाले हैं, सींग वालों को
मार देते हैं, सींग पर धर के।

शान्ति देखी न पक्षियों में भी,
हैं लँडूरे मगर अकड़ते हैं।
कुछ नहीं, चार चोंच चारे पर,
चार ही चार चोंच लड़ते हैं।

जब है क्यू-क्लेक्स-क्लैन दुनिया में,
क्या हैं सिद्धान्त शान्ति के कोरे?
गाड़ देना ही चाहते हैं जब,
जिन्दा कालों को गोर में गोरे।

देखकर कौर और के मुँह का,
राल टपकाते छीन लेने को।
ढूँढ़ते नुक्ताचीं हैं यक नुक्ता,
चीनियों से भी चीन लेने को।

राक्षसी वृत्तियाँ हैं राष्ट्रों की,
मौका पाएँ तो बस हड़प जाएँ।
इनकी करतूत का जो नङ्गा चित्र,
देख लें आप तो तड़प जाएँ।

मोल लेते लड़ाई फिरते हैं,
क्या नहीं ये खबीस करते हैं।

फिर भी दुनिया को पीसने के लिए,
कान्फरेन्स आफ पीस करते हैं।

क्यों न खलता खले खलों की कहो,
जो क्षमा शान्ति जानते ही नहीं।
मान-रक्षा करें न क्यों हिन्दू-
जब मुसलमान मानते ही नहीं।

ऐसी हालत में कौन हिन्दू है-
अब भी जो शान्ति धारना सीखे।
मोम की नाक मारवाड़ी भी
खाके जब मार मारना सीखे।

क्रान्ति में शान्ति भ्रान्ति है कि नहीं,
कह दें जो शान्ति के हों अनुयायी।
विश्व भर में अशान्ति है फिर भी,
शान्ति यह आपने कहाँ पाई?

कलकत्ता
कविसम्मेलन
१९२७।

ऋतुराज

अहह ! वन भुवन है धारण कर रहा सुखद शोभा को आज।
ऋतुपति का दरबार लगा है, जड़ चेतन का जुड़ा समाज॥
पीले पुष्प सुभग सरसों के स्वर्ण सितारे जड़े हुए।
पद - प्रोक्त हैं हरित मखमली दूर्वादल के पड़े हुए॥
लाल ध्वजा ले फूले किंशुक द्वारपाल हैं अड़े हुए।
नव पल्लव - परिधान पहिन तरु - सैनिकगण हैं खड़े हुए॥
पुष्पाभरणों से सज्जित पुष्पासन पर माधव अभिराम।
हुए सुशोभित एक पार्श्व में बैठे मंत्री काम ललाम॥
शान्ति-सूक्त पढ़ते विहङ्ग-ब्राह्मण हैं मृदु ध्वनि से सस्वर।
वृक्ष चढ़ाते पुष्पाञ्जलियाँ बढ़ा बढ़ा कर शाखा-कर॥
कर कर के गुञ्जार मधुप शहनाई मधुर बजाते हैं।
चेतन क्या ? जो जड़ हैं वह भी फूले नहीं समाते हैं॥

प्रातःकालिक वायु उड़ाता फिरता पुष्प-पराग-गुलाल।
क्षिति से नभ तक लाल रङ्ग से किया उषा ने सबको लाल॥
नाल-करों से पद्म-पियालों में मधुरी मधु-मदिरा ढाल।
रसिक जनों को आप्यायित कर रहे सरोवर सरस कलाल॥
मधुर कण्ठ कवि-कीर सुनाते हैं कवितावलि कोमल कान्त।
कुंजों में हैं वेणु बजाते वेणु खड़े स्थिर हो एकान्त॥
गिरि-झरनों से जल तरङ्ग की जलतरङ्ग-ध्वनि आती है।
पञ्चम स्वर में "कुहू"-"कुहू" कोकिल रागिनियाँ गाती है॥
हो होकर प्रस्फुटित दे रहीं मंजरियाँ मंजीरा-ताल।
घूम-घूम निशि-दिवस निशापति, दिनकर दिखला रहे मसाल॥
प्रकृति नटी चंचला कभी हो द्रुत-गति मृग मतवालों में।
मन्द मन्द पग रख नर्तन करती है कभी मरालों में॥
हाव-भाव से मोहित होकर अपने को सकते न सँभाल।
झूम-झूम झुक-झुक पड़ते हैं बौरे प्रेमोन्मत्त रसाल॥

× × ×

कहीं लताएँ गल-भुज डाले वर तरुओं से मिलती हैं।
पर-पति-पवन-स्पर्श किए हट दूर प्रकम्पित हिलती हैं॥
कहीं फलित डालियाँ हो रहीं एक-एक पर अवलम्बित।
खिल-खिल हँसते हैं गुलाब लख पड़े भूमि पर पत्र-पतित॥
जगत सुखी हो रहा "हितैषी" जङ्गल में भी मङ्गल है।
दुःखित है तो क्रूर, अपत, अरसिक करील ही केवल है॥

वसन्त पञ्चमी
१९१६।

प्रातःकालिक सन्देह

उषा है या रक्त-कुण्ड प्रजा-अनुरक्तों के,
किन्हीं देश-भक्तों के है रक्त से भरा हुआ।
पीने को साम्राज्यवाद पश्चिमीय दैत्य के,
याकि बहाया हुआ ये रक्त दीन जन का।

एक्यावन

व्यर्थ, आया स्वर्ग से विनतवार करने,
निज देश-वासियों से ऐश में जो भूले हैं।
अङ्क में लिए है उषा रक्त-वर्ण सूर्य्य को,
या किसी स्वदेश के शहीद का ये मुण्ड है।
जो कि रक्त-कुण्ड से है निकला अभी अभी,
कर स्वार्थ तम को विदूरित गगन से-
आलोकित करता हुआ ये स्वर्ग-लोक को,
पृथ्वी पै प्रसारकर क्रान्तिमयी किरणें।
नाम धारी निशि के बहादुर उलूक ये,
भागे चमगादर हैं देखकर जिसको।
ा कि तमचारी कुल-वधू है तमोमयी-
दुकूल ओढ़े ये पद्मलोचना सुलोचना।
निज पति इन्द्रजित वीर बलशाली जो-
था स्वदेश, जाति, धर्म-रक्षा के लिए लड़ा।
ऊर्ध्व बाहु हो, था जिस सुर-राहु ने कहा,
देकर धिक्कार बार-बार विभीषण को-
हो करके वृद्ध, हा! समृद्धशाली देश के-
वीर वर बन्धु! कैसे वैरियों से जा मिले?
माना, नर-रूप हैं वे नारायण फिर भी,
मिट्टी में मिलाने को तुले हैं स्वर्ण-लंका को।
जो कि है हमारी प्यारी मातृभूमि जननी,
उसको विनाश करने जो अविनाशी भी-
आए हैं तो ये हमारी कठिन परीक्षा है,
इसमें उत्तीर्ण होना ही है महावीरता।
जिससे प्रसन्न होंगे प्रभु जी अधिक ही,
क्योंकि उनकी ही तो है आज्ञा हम सबको।
"यदि देश-धर्म के विरुद्ध भगवान भी-
आएँ, तो है धर्म, उनसे भी युद्ध करना।"

विश्रवा के वंशज विभीषण जी, तुम तो,
ज्ञाता धर्म के हो औ' विधाता राजनीति के
कौन मुँह ले के देश-वैरियों से मिलके,
बन्धुओं का वध करवाते हो बताओ तो ?
लोकोक्ति नहीं क्या तुमने ये सुनी अब लों ?
"विपत्ति में बन्धु ही है बन्धु होता बन्धु का।"
कैसा वैर ? अपना फिर भी अपना ही है,
जिस देशप्रान ने यों कहके स्वप्राणों को-
कर दिया बलिदान मातृभूमि वेदी पै-
लेके दीप्तमान मुण्ड उस देशभक्त का।
शुक्रोदय होने पर चिता पर चढ़ के,
निज हार-हीरक से तारकों को तोड़ के।
दीन दुखियों को रत्न वितरण करती,
निज नाशमान तृण सम तन त्याग के।
जाती पास प्रिय के है प्रेम की प्रणयिनी,
ज्वाला लाल लाल प्रज्वलित है ये उसकी।
प्रातःकाल है ये, या कि काल प्राची दिशि का,
तम-तन-धारी हो खड़ा है जो प्रतीची में-
अथवा जगा है कुम्भकर्ण वीर लंका का,
जो कि शंका-रहित हो आया फिर पूर्व में।
प्रतिशोध लेने पुरुषोत्तम के वैर का,
जिसके कि शत-शत योजन के श्मश्रु हैं।
भोजन जो करता है लक्ष-लक्ष जीवों का,
समझ के मदिरा जो मानवों के रक्त को।
प्याला बनाकर, प्रभाकर को ले कर में,
कुछ पान करके औ' कुछ ज्ञानशून्य हो-
ढुलका रहा है उदयाद्रि-स्वर्णासन से,
लाल-लाल मुँह महा विकराल करके-

प्रसारित ये पूर्वीय देशों को जो सहसा-
निगल ही जाना चाहता है एक ग्रास में।
मन्द-द्युति-नक्षत्र निशाकर ये नभ के-
हुए, या कि तम-दैत्य ही के संग-दोष से-
पूर्वीय स्वजन्म भूमि से ही द्रोह करके,
पीले पड़े, भाल पर कालिमा-कलङ्क ले-
पश्चिम-समुद्र वाले चुल्लू भर जल में,
डूबा जा रहा है शशि, मुँह न दिखा सका।
नत-शिर हुए सर्व उन्नत नक्षत्र भी,
हो रहे पतित से पतित भूमितल पै।

× × ×

पक्षीगण निज-निज नीड़ों से निशान्त में,
निकल-निकल, कर रहे कलरव हैं।
या कि ये भयानकता सोच के भविष्य की,
जब स्थल-जल में औ' विस्तृत गगन में-
होगा विकराल युद्ध अग्नि, वाष्प, धूम, से,
जिसमें निरपराध जीव, जन्तु गण का,
होगा नाश, इस हेतु शोकोच्छ्वास छोड़ के,
रुदन करुण कंठ से सकल करते।

× × ×

परम प्रसन्न हो प्रशान्त सिन्धुपति से,
द्रुत वेग से है जो कि मिलने को जा रही।
आतप से तपित महीतल के जनों को,
शीतल है करती पिलाके सुधा-जल जो।
स्तम्भित सी होके वो प्रवाहित तरङ्गिनी,
कलकल शब्द करती है या विकल हो।

मूँदकर नयन - कुमुद, लाल क्रान्ति से,
करना असहयोग शान्तिमय चाहती।

× × ×

पवन प्रबल मत्त मातङ्गों की गति से,
इठलाता इधर उधर है जो फिरता।
सन सन शब्द कर सन के सुगन्ध से,
फूले हुए फूल धनियों का धन हरता।
साधुओं को वितरण करता जहाँ तहाँ,
डरता प्रकम्पित-सा कुछ निज मन में।
होकर के सजग सदैव जग-मग में,
रखता है पाँव फूँक-फूँक के सँभल के।
देख के प्रभाव धनवाद, सत्तावाद का,
साम्यवादियों सा क्रूर दृष्टियों से छिपके-
आश्वासन देता रहता है दीन जन को,
श्वास प्रति श्वास पृष्ठपोषक सा सर्वदा।
दृश्य ये अद्भुत सा है आज देख पड़ता,
और ही का और, कुछ आता न समझ में।
प्रातः काल है ? या क्या है ये संदेह होता है।

अगस्त सन् १६२४।

मेवाड़

हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

जग लालायित है सुनने को फिर से तेरी सिंह दहाड़।
हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

फिर से गौरव गत दिखला दे,
वे योद्धा उद्धत दिखला दे,
फिर से जौहर - व्रत दिखला दे,

अपना अरि-दल पकड़ पछाड़।
हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

कण्ठ भरें आशिष - मालों से,
रक्त - तिलक चमकें भालों से,
भरभर हो रण - मतवालों से,

गर्जन गगन - हृदय दे फाड़ ।
हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

झिलिम टोप फिर तेरे झमकें,
तेरी खड्गें चम - चम चमकें,
फिर से तेरे धौंसे धमकें,

प्रतिध्वनित हो उठें पहाड़ ।
हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

दृढ़ता के गिरि, फिर हो दृढ़ जा,
बढ़ जा, युद्ध-क्षेत्र में बढ़ जा,
उन्नति - गिरि-शिखरों पर चढ़ जा,

जा अपना विजय ध्वज गाड़ ।
हे मेवाड़ !
हे मेवाड़ !!

उदयपुर
जून १९३७ ।

बादल से

बरसो प्यारे काले बादल !

द्रवित, दयानिधि के तुम दृग हो,
मन उज्ज्वल तन श्यामल चञ्चल।
बरसो प्यारे काले बादल !

"पीउ कहाँ" बस "पीउ कहाँ"
रटते रहते चातक निश्छल पर,
"काले मेघा पानी देना" चिल्लाते -
शिशुओं के दल पर।
रवि - उत्ताप - तपित वसुधा के -
उर - मरु के विदग्ध रेतों पर,
रोते हुए, नितान्त दीन अवसन्न -
कृषक जन के खेतों पर।

भग्न हृदय हो तरल बह चलो
अविरल अश्रु-धार बन, छलछल।
बरसो प्यारे काले बादल !

अलीपुर जेल
श्रावणी
सन् १६२१।

कमला के प्रति

कमले ! कमलदल - निवासिनी माया ,
कमल - सी कोमलांगि, कमलनयनि ।
कमल - करों में ले कमल अधखिले ,
युग - पद - कमल कमल पर धरे ।

करती विहार जो कमल - वन मध्य ,
कैटभारि कमलनयन जी की प्रिया ।
कमला ! वो पाके जिसे मानव - हृदय ,
बन जाता वज्र से भी बढ़ के कठोर ।

वारुणी की, कालकूट - विष की बहिन,
जिसका कलङ्की चन्द्र भ्राता कहलाता।
मदिरा के मद से भी है महान मद -
जिसका, वही श्री शेष - शय्या निवासिनी।

स्पर्श से हुए हैं जिसके कि प्रभु कृष्ण,
इसी हेतु क्षीर - सिन्धु में हैं बसे जाके।
कमल बसाए नाभि में हैं, सुधा पी है,
फिर भी न जिसके मद को मिटा सके।

जिसके पदों के पास अगणित घोंघे,
असंख्य ढपोलशंख लोटते हैं पड़े।
जिसके लिए, हा! कौड़ी के हैं तीन-तीन -
कुलवान, गुणवान, औ' महान कवि।

कमल के नालों में हैं भुजङ्ग लिपटे,
विकराल फनवाले विषधर काले।
जिन पै कि सिद्धजन के भी सिद्ध मंत्र -
यंत्र, तंत्र, नहीं डाल सकते प्रभाव।

जिसके हैं बड़े - बड़े उलूक वाहन,
बड़ी-बड़ी लोष्ठ - सी आँखें हैं काढ़ते जो -
आर्त्त जन पै वे अट्टहास हैं करते,
मानों दीन जनों को हड़प कर लेंगे।

उसको मैं दूर से ही करता प्रणाम,
और करबद्ध इतना है निवेदन।

मुझको बनाना मत अपना वाहन -
कृपापात्र, कृपा करके हे कृपामयी।

सह सकूँ जिससे विपत्ति कष्ट घोर,
निशि दिन भगवान ही का ध्यान धरूँ -
जब दीनबन्धु होंगे दीन पै सदय,
तो फिर करूँ क्या तुझ तुच्छ की गणना ?

प्रभु का वो शक्तिशाली गरुड़ वाहन,
पञ्चदश सहस्र - योजन - दूर - दृष्टि -
जिसकी है सप्तलोक में न कहीं रोक,
कुटिल कुचाली विषधरों का है शत्रु।

त्याग कर प्रेय श्रेय ही में जो है मग्न,
नित्य उच्च भक्ति, ज्ञान-नभ में उड़ता।
दिवान्ध उलूकों की उड़ान तब क्या है ?
जुगुनुओं की प्रचण्ड रवि से तुलना ?

नर-जन्म पाके एक यही अभिलाषा,
वैनतेय जैसा भक्त प्रभु का बनूँ मैं।
शत चञ्चला भी होके जिससे अचला,
आएँ द्वार प्रभु के पाँवों पै लोटने को॥

लक्ष्मी-पूजन
१९१७।

वन
वन
खिल गया
विपुल वसन्त
वायु मन्द - मन्द लिए
शीतल सुगंध लिए
निखर पड़ा है स्वर्ण सुमन - सुहास
नव - नव दल लिए, फूल लिए, फल लिए, विविध विलास
फिर नव आशा उठी, बोल मूक भाषा उठी, अतृप्त पिपासा उठी
काकली विकल लिए, नयनों में जल लिए, शीतल उच्छ्वास
बिखर पड़ा है हाय ! विफल - प्रयास
एक निरानन्द लिए
दुखदायी द्वन्द्व लिए
उर में अनन्त
हिल गया
मन
मन

वसन्त
सं० १९७७ ।

कौन सहेगा मेरे शायक ?

हो करके पिक, वाग्वाण जब-
मैंने पतझर के उर - मारा।
क्षण भर में ही शुष्क शिशिर का
सरस वसन्त बन गया प्यारा।
वर्ण सुवर्ण हुआ जगती का
शीतल सुखद समीरण डोला।
हटा हटा कर पत्रों का अवगुंठन
कलियों ने मुख खोला।
मन्मथ मन मथने को सबका
मेरा सहयोगी बन आया।
सुमन सुसज्जित, सुमन सुरथ पर,
इस अशक्त जग पर चढ़ धाया।
सुमन - शरासन से सुमनों के-
शर है बारम्बार चलाता।
पत्तन में, पलाश के वन में,
जग-जन-मन में आग लगाता।
सुस्थिर सौरभ - सिंधु प्रवाहित-
हुआ, चले भँवरे उत्साहित।
श्वास - सितार बजाकर अपने
जाग्रत देख रहे सुख - सपने।
मधु के मधुर मधुर गुनगायक।
कौन सहेगा मेरे शायक ?

शिशिर
सं० १९८५।

द्विवेदी जी के शोक में

लूटकर सोने का संसार -
ले गया कौन ? दे गया कौन ?
हाय यह आँसू का उपहार ?
है धरा शून्य,
है गगन शून्य,

हो रहे अग्नि, जल, पवन, शून्य।
शून्यता दशदिक में छा गई,
हुआ साहित्यिक उपवन शून्य।
अभिलषित बातें कर अन्यथा
सुना कानों में करुणा - कथा,

दे गया है व्याकुलता - वह्नि कौन उर में
वियोग की व्यथा?

भवन आशाओं का कर भग्न,
निधन करता है नर्त्तन नग्न?
आ रहा है आँखों में ज्वार,
जगत है शोक - सिन्धु में मग्न।

× × ×

काल का विकट विडम्बन देख,
प्राण - पीड़ा का पीड़न देख,
क्षणों का लखकर कुक्षण रूप,
अष्ट प्रहरों का प्रहरण देख,

निकलता है मुख से स्वयमेव,
'दुर्बलों का घातक है दैव!'

× × ×

निदाघातप का मलय - पवन,
स्वर्ण - पक्षी का कल कूजन,
तापितों का तरु - छायातल,
आर्त्त तृषितों का शीतल जल,

भिखारी की सोने की खान,
निराश्रित के आश्रय का मान,
शरत् - ज्योत्सना का पूर्ण - प्रसार,
कहाँ हेमन्त - शस्य - संभार,
शीतकालिक - आतप - सुख हाय!
मधु - सुमन का सहास्य मुख हाय!
विश्व - वाणी का वह शृङ्गार,
कहाँ लय है वीणा - झङ्कार?
मूर्च्छना, मूर्च्छित, श्रुति बेकार,
मूक बन बैठे क्यों स्वर - तार?
सुन रहा क्रन्दन करुण अपार,
हृदय क्यों करता हाहाकार?

(आचार्य के निधन पर)

ताड़ीवाला*

मैं ताड़ीशाला की सुन्दरि, मैं हूँ तरुणी ताड़ीवाला।
मैं ऊँचे कुल की कन्या हूँ, ऊँचा कुल मेरा रखवाला!

निज मस्तक ऊँचा करने ही-
वालों ने मुझको है पाया!
नीच जनों को, पतित जनों को,
मैंने ही अति उच्च उठाया!

मैं हूँ अमरपुरी की वासी,
मुझको सब कहते आकाशी।

---

* मधुबाला का खण्डन

सच्चे अभिमतवाले समझे, समझे क्या कोई मतवाला ?
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(२)

वरुण - निवास मथा देवों ने,
कह करके वारुणी पुकारा।
सप्ततात को बेध राम ने,
मुझको पी कर बालि सँहारा।

द्वापर में धेनुक - बध कर के,
पान किया अञ्जलि भर भर के।
बलिहारी बलराम हुए तो मैंने भी बल में बल डाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(३)

कलि में वर्ग - विरोध मिटाकर,
एक नया ही वर्ग बनाने।
स्वर्गलोक से मैं आई हूँ,
भूतल को भी स्वर्ग बनाने।

पाप हटा, पुन लेकर आई,
श्वेत सतोगुन लेकर आई।
राग रजोगुण का भी मेटा, मेटा द्वेष-तमोगुण काला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(४)

उज्ज्वल रूप लिए आई हूँ,
तममय भव - वन उज्ज्वल करने,

जग - ज्वाला से दग्ध - उरों का,
काला तन, मन, उज्ज्वल करने।

अदना हो चाहे हो आला,
जो है मेरा पीनेवाला।
हेय हलाहल-हाला त्यागी, उसका ही है मुख उजियाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(५)

सूखेपन का कर्तन करती -
नभ से नर्तन करती आई।
लघु मिट्टी के बर्तन में भी -
मैं परिवर्तन करती आई।

यह आवर्तन वह जानेगा,
प्रत्यावर्तन वह जानेगा।
दृश्य मिटाकर, दृष्टि मिटाकर, जो द्रष्टा कहता है ला, ला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(६)

मुझसे ध्यान लगाया, ऊँचा -
चढ़के जग से दूर हुआ वह।
जिसने मुझसे ध्यान हटाया,
गिर कर चकनाचूर हुआ वह।

जिसकी है पत्थर की छाती,
हाथ उसी के हूँ मैं आती।
वृत्ति नहीं भव-भीता जिसकी पीता निर्भय-प्रेम पियाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(७)

उच्च स्थान मिला मेरा, तो -
नीची सारी सृष्टि मिलेगी।
ब्रह्म - विचारक बुद्धि - मिलेगी,
अति दूरङ्गत - दृष्टि मिलेगी।

और न कोई व्यष्टि रहेगी,
केवल एक समष्टि रहेगी।
वह सुरपुर पर राज करेगा, खुल जाएगा उर का ताला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(८)

मुझको ही पाकर दुनिया का -
सारा चक्कर घूम उठेगा।
मेरे अधरों को चूमेगा जो -
मतवाला, झूम उठेगा।

बस हस्ती मालूम उसी की,
होगी जग में धूम उसी की।
सृष्टि अचेतन का वह चेतन मेट सकेगा जग की ज्वाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(९)

है प्यासे जन में संघर्षण,
है मुझ में ऐसा आकर्षण।
मेरा नाम पड़ा अघमर्षण,
करती आई नव - मधु - वर्षण।

कर पाया जो मेरा स्पर्श न,
पा न सकेगा भगवद्दर्शन।
मेरा पान समझ लो, पहला ज्ञानी का सोपान निराला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीवाला।

(१०)

सप्त पुरों को शीतल करती,
मैं असुरों को शीतल करती।
क्लान्त सुरों को शीतल करती,
दग्ध-उरों को शीतल करती।

तृप्त महीतल को करती हूँ,
सोना पीतल को करती हूँ।
नभ से उतरी सत्य-सुरा हूँ, मार लिया हाला से पाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीवाला।

(११)

भूमि गड़ी से प्रेम करेगा-
जो, वह भू में गड़ जाएगा।
नभ-सुन्दरि से प्रेम करेगा-
जो, वह ऊँचा चढ़ जाएगा।

शोक-सिन्धु से कढ़ जाएगा,
स्वर्गलोक तक बढ़ जाएगा।
आवागमन न हो, मुझको जो नमन करे मन से मतवाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीवाला।

(१२)

तन से धन से हीन बिचारे -
दीन गरीबों की साथिन हूँ।
जो हैं पर - आधीन उन्हीं -
बलहीन गरीबों की साथिन हूँ।

पर हित कर न सकी अंगूरी,
खा करके छाती पर छूरी।
मेट विषमता को मैंने ही ममता से समता को पाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१३)

ताड़ी नाम पड़ा यों मेरा,
ताड़न करती अभिशापों का।
ताड़न करती हूँ पापों का,
ताड़न करती त्रयतापों का।

राग, विराग अलाप रही हूँ,
मैं घट - घट में व्याप रही हूँ।
थाप रही सुख शान्ति अनोखी, काढ़ रहे दुख, दैन्य दिवाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१४)

शरद - वारिदों पर चढ़ चमकी,
वज्र - विभा हो उपमानान्या।
है नीलम - अफीम अधमा, क्या -
मानिक - मदिरा तुच्छ नगन्या?

उभय तमीचर - तनया वन्या ?
मैं हरिजन - हरिभक्ति अनन्या।
मैंने पय-पयोधि-कन्या हो प्रभु-पद-पद्मों को प्रक्षाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१५)

मदिरा ऊषा सी, मैं रवि सी,
मदिरा मसि, लेखनि मैं कवि सी।
है मदिरा हवि सी, मैं हुतभुक।
मदिरा जड़ पर्वत, मैं पवि सी।

मदिरा बुन्द बनी शबनम की,
मैं जग में हीरक हो चमकी।
गमकी मैं शत योजन-गंधा, है मधुबाला व्यग्र बिहाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१६)

जीवन - हन्ता मद त्यागन कर,
जीने को दुनिया से कहते।
गाँधी जी भी ताजी ताड़ी,
पीने को दुनिया से कहते।

आज्ञा है अवधार्य उन्हीं की,
बोलें जय ! सब आर्य उन्हीं की।
सर्वनाश हो मधुबाला का, बोल रहे गाँधी का बाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१७)

मैं अम्बर से ओप भरी - सी,
उतरी आती इन्द्र - परी सी।

सुरपुर की सुरसरि गहरी सी,
वाणी - वीणा - स्वर - लहरी सी।

दानी - उर की दिव्य दया सी,
माँ की ममता महत मया सी।
ज्ञान-चक्षु अज्ञान-जनों को देती, दिखलाती जग-जाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१८)

वासना तृप्ति के दास उधर,
मदिरालय में ही बन्दी हैं।
ताड़ीशाला में तापों के -
ताड़नकर्ता आनन्दी हैं।

सब प्राणी हैं स्वच्छन्द यहाँ,
व्यापा है ब्रह्मानन्द यहाँ।
पाकर के तृप्ति अतृप्ति यहाँ, है कर्मठ, हर बैठा ठाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(१९)

शीतल करना हो तप्त हृदय,
वह आए प्रेमिक - हट्टी में।
तन मन करना हो दग्ध जिसे,
जाए कलवरिया - भट्टी में।

ताड़ीशाला क्या तपवन है,
ताड़ी क्या ? तन-मन-ताड़न है।
पाता है "ब्रह्म रसामृत" वह, जो है इसका पीने वाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(२०)

भौतिक मधुशाला को भी जो,
स्वप्नों से निर्मित बतलाता।
भौतिक मधु - प्याला को भी जो,
स्वप्नों से विरचित बतलाता।

तृष्णा तुच्छा के गुण गाता,
स्वप्निल - हाला कह बहकाता।
दुःस्वप्नों की दुनिया में वह कैसा भूला, भोला भाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

(२१)

शोकाग्नि बुझे रस - ब्रह्म मिले,
वश में होते दश वायु यहाँ।
ऋषि भूमिज व्योम-विहारी बन,
पा जाते हैं परमायु यहाँ।

तारक शिव - वाणी ताड़ी ये,
पी ले जो प्राणी ताड़ी ये।
यम का भय क्या, निर्भय, उसने अघ-ओघों का है घर घाला।
मैं हूँ तरुणी ताड़ीबाला।

सितम्बर
१९३६।

---

*मालिक ताड़ीशाला

मैं ताड़ीशाला का मालिक,
मैं हूँ मालिक ताड़ीशाला।
मैं हूँ इस खिलकत का खालिक।
है यह मेरा खुल्क निराला।

---

*मालिक मधुशाला का खंडन

इस कोठी का धान निकाला,
लेकर उस कोठी में डाला।
इसका उसमें, उसका इसमें -
करता रहता बैठा ठाला।

यों कहने को मैं हूँ कर्ता,
पर वास्तव में नित्य अकर्ता।
जो कुछ भी है सब मुझमें है, मैं सब में हूँ रहनेवाला।
मैं हूँ मालिक ताड़ीशाला।

(२)

यह दुनिया ताड़ीशाला है,
मैं ताड़ीशाला का स्वामी।
अघटित घटना नित्य घटाता,
घट - घट का हूँ अन्तर्यामी।

पूरा घट रीता करता हूँ,
जी करता है, फिर भरता हूँ।
कोई रीता, कोई पूरा, यह है मेरा खेल निराला।
मैं हूँ मालिक ताड़ीशाला।

(३)

प्रज्ञा प्याली भर मिट्टी की,
प्याली बाँकी का ध्यान न कर।
मेरी बाँकी झाँकी लख ले,
जग की झाँकी का ध्यान न कर।

अब छोड़ सुरा साकी बच्चे!
सुध कर जो है बाकी बच्चे!
यमदूत हलाहल - हाला से भरते जाते जीवन-प्याला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(४)

पहले है मीठा फिर कड़ुआ,
केवल मधु ही मधु नाम रहा।
मधुपायी के जीवन को कटु-
करना, इसका परिणाम रहा।

जीवन को मत विश्री कर ले,
ताड़ी पी ले मिश्री कर ले।
नभ से ऊँचा उठना हो, तो कुछ देख जरा ऊँचा खाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(५)

हर मधुपायी से मिल जुल के,
कड़ुआ मधु है कह दो खुल के।
यदि जाओगे मधुशाला में,
तो मर जाओगे घुल-घुल के।

इससे सुरपति को कष्ट हुआ,
इससे यादवकुल नष्ट हुआ।
हाला-प्रेमी-जन की अब भी रोती हैं बेहाला बाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(६)

अदना फीका पकान्न न दे,
दूकान दिखा करके आला।
सुकुमार सदा साकी होते,
होती न कभी साकी बाला।

हाला विष है, प्याला विष है,
यह तेरी मधुशाला विष है।
मधुशाला की बाला विष है, साकी आफत का परकाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(७)

करके भौतिक मधुपान सदा,
छाँटा करता जो ज्ञान सदा।
बनता है जो सज्ञान सदा,
समझो उसको अज्ञान सदा।

लौकिक हो लोक विलग्न रहे,
आध्यात्मिकता में मग्न रहे।
जग में रह, जग से बाहर हो, उसका ही बोल रहे बाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(८)

देखें क्या पात्र भरे छलके?
देखें क्या सुन्दर तन मल के?

अपना तो है बस, एक अमल,
नित दर्शन करते निर्मल के।

बोझे फेंके कल बल छल के,
बढ़ते जाते हलके हलके।
ढाले क्या, जो ढल रहा आप? जग काँचे साँचे का ढाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(६)

मत कामिनियों के पट देखो,
उनको तज अपना घट देखो।
मायाविनि माया सुन्दरि के-
मुख, माया का घूँघट देखो।

लट में मत यार फिरो लटके,
युग बीत गए भटके-भटके।
लटके सीखो मुझ कामिल से, जिससे कट जाए जगजाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(१०)

पीते थे मधु के घड़े-घड़े,
वे पीनेवाले बड़े-बड़े।
सुन्दरियों, साकी, सुरा बिना,
कब्रों में सड़ते पड़े-पड़े।

उनको, वह रात, अँधेरा है,
जिसका अब नहीं सबेरा है।
तज लोक, विलोक सके मुझको, उसको आलोक मिले आला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(११)

जो तङ्गदस्त बनना चाहे,
हर तौर पस्त बनना चाहे।
तन से शिकस्त बनना चाहे,
जो व्यर्थ मस्त बनना चाहे।

जो यों ही अस्तव्यस्त रहे,
विपदाओं से ही ग्रस्त रहे।
रवि-अस्त भाग्य का है उसके, दुर्भाग्य करेगा मुख काला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(१२)

जिसमें कुछ अपनी आन न हो,
मर मिटने का अरमान न हो।
कुछ धर्म न हो, ईमान न हो,
जिसमें कुछ बाकी जान न हो।

वह हो मदिरा पीनेवाला,
मुर्दा रहकर जीनेवाला।

उस धिक्कृत को, जीवित-मृत को, आवृत करती नरक ज्वाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(१३)

ले बोल, सुरा पीकर तुतले,
जुत ले जग-कोल्हू में जुत ले।
पर याद रहे मिट्टी में ही-
मिलना है मिट्टी के पुतले!

धन, जन, तन साथ न जाएगा,
यह जीवन हाथ न आएगा।
मन रोएगा, पछिताएगा, पड़ जाएगा मुख पर ताला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

(१४)

जग में न डोल के डिग जाना,
मुझको न बोल के बिसराना।
नभ, धरती, तज के अधर मध्य-
है प्रेम-कुटी तुझको छाना।

इस तन में आधि न व्याधि रहे,
हाँ! केवल योग-समाधि रहे।
बस ज्ञान-ताल की चोटी पर बन जा तू अचलासन वाला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

सच्चाई में मत ढोंग मिला,
नर तन का क्षणिक सुयोग मिला।
वासना रोग कर नाश अरे!
संभोग मध्य तू योग मिला।

दुखिया है सब संसार सदा,
सुखिया का मैं आधार सदा।
जिसकी लौ मुझमें लगी हुई, है वह अदना जग से आला।
कहता मालिक ताड़ीशाला।

अगहन
१९३६।

---

*प्यासा

झूठी दुनिया में पा न सके जो,
वह हम पाने आए हैं।
ताड़ीशाला के द्वारे पर,
हम प्यास बुझाने आए हैं।

---

*"प्यास बुझाने आए हैं" का खंडन

नभ में जब घन घनघोर उठा,
वन में हो नर्तित मोर उठा।
प्रियतम की ताड़ीशाला से-
आओ, आओ, का शोर उठा।

युग युग के भूले भटकों को हम राह बताने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(२)

उज्ज्वल निशि - अञ्चल छोर हुआ,
उज्ज्वल प्राची में भोर हुआ।
कज्जल के कोठे में उज्ज्वल-
रहना वन्दे ! यह शोर हुआ।

मल धो करके, निर्मलता से घट पूर्ण बनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(३)

है सदा यहाँ आवास नहीं,
पूरी होने की आश नहीं।
जलते उर की जग के जल से-
है बुझने वाली प्यास नहीं।

हम उपनिषदों में कथित "रसो वै सः" को पाने आए हैं
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(४)

जो पोथी पत्रे छोड़ रहे,
मंदिर मस्जिद को तोड़ रहे।
जो मदिरालय की चौखट पर-
अपने मत्थे हैं फोड़ रहे।

धर्मचर, भद्रंवद, उनको इतना सिखलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(५)

क्रोधी मुल्ले से रार करो,
ठग पण्डे से तकरार करो।
सच्चा पण्डित मिल जाए तो-
उसको भी जी से प्यार करो।

मधु में मक्खी जो फँसी उसी की बन्दि छुड़ाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(६)

क्या आशा और निराशा क्षण?
किसका कहता नश्वर जीवन?

लख अलख निराशी अमर रूप -
अपना, क्यों करता है क्रन्दन ?

करतल-गत वत निर्द्वन्द सच्चिदानन्द दिखाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(७)

प्याले मीने पर लाज भली,
छिपकर पीने पर लाज भली।
दुष्कर्मों को दुष्कर्म समझ,
कुत्सित जीने पर लाज भली।

मृतक भले निर्लज्जों से—जो जग भरमाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(८)

पानी है सागर काले में,
पानी है नद में, नाले में।
उसका पानी मर गया जो कि-
"अपनत्व" डुबाता प्याले में।

जिनमें है पानी शेष उन्हीं को हम अपनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(९)

अपवर्ग सत्य, पर च्युतकारी,
सुख-वर्ग सत्य, पर च्युतकारी।
जीवों का आवागमन सत्य-
है स्वर्ग सत्य, पर च्युतकारी।

सुख-स्वर्ग, दुःख-नरक के ममता, भय, आज छुड़ाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१०)

अघ-आलय तीर्थ नहीं होगा,
वेश्यालय तीर्थ नहीं होगा।
शत-शत गङ्गा धोएँ तो भी,
मदिरालय तीर्थ नहीं होगा।

है आत्मप्राप्ति ही तीर्थ, जहाँ सब को पहुँचाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(११)

क्या बन्धन, मुक्ति और पस्ती ?
है कौन मस्त ? कैसी मस्ती ?

जो लोग "फ़ना फ़िल्लाह" हुए,
हस्ती को क्या समझें हस्ती ?

हस्ती, मच्छर, पर्वत, पत्थर, सब एक सुझाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१२)

मैखाना है न कहीं खुम हैं,
साकी, सागर सब ही गुम हैं।
ताड़ीवाले हैं ताड़ गए,
दुनिया है और न हम-तुम हैं।

सपना अपना, अपना सपना करके दिखलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१३)

क्या चिरजीवी हो मधुशाला,
क्या चिरजीवी हो मधुबाला?
दुनिया की उलटन-पलटन में,
आबाद रहे क्या मधुशाला?

है रामनाम ही सत्य, उसी की याद दिलाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१४)

घट पै घट है तूने ढाला,
दरिया का दरिया पी डाला।
अनबूझ पहेली बूझ, नहीं-
मिटती, आशा-तृष्णा-ज्वाला।

ज्ञानामृत का ले बुन्द, तुझे कृतकृत्य बनाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१५)

वह शोहरए आफाकी न रहा,
सागर न रहा, साकी न रहा।
बदमस्तों की महफिल में तो,
अब कोई भी बाकी न रहा।

उलझी है तेरी अक्ल - गिरह, उसको सुलझाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

(१६)

सपना ऐ चञ्चल देख चुका,
भावुकता का फल देख चुका।

मधुशाला जिसको समझा था,
मृगतृष्णा का छल देख चुका।

पछतानेवाले को ही तो हम कण्ठ लगाने आए हैं।
हम प्यास बुझाने आए हैं।

अगहन
१९३६।

मज़दूर

ओ मज़दूर !
ओ मज़दूर !!
तू ही सब चीज़ों का कर्ता,
तू ही सब चीज़ों से दूर।
ओ मज़दूर !
ओ मज़दूर !!
गर्मी तुझे तपाती आती,
वर्षा देह घुलाती आती,
सर्दी खून सुखाती आती,
तेरे उद्यम
तेरे साधन
तो भी तू इतना मजबूर।
ओ मज़दूर !
ओ मज़दूर !!

तेरे हाथों पर्वत राई,
राई पर्वत गई बनाई,
कर्ता, हर्ता, भर्ता भाई,
आदि शक्ति
तेरी दासी है
महाशक्ति से तू भरपूर।
ओ मजदूर !
ओ मजदूर !!
तू ही जल में तू ही थल में,
पाया तुझे वायु चञ्चल में,
बैठे देखा तुझे अनल में,
तू ही नभ-
मंडल से ऊँचा
तू ही चन्दा, तू ही सूर।
ओ मजदूर !
ओ मजदूर !!
भूले जग का सालिक तू है,
मालिक का भी मालिक तू है,
इस खिलकत का खालिक तू है,
तू चाहे तो
पल में कर दे
इस दुनिया को चकनाचूर।
ओ मजदूर !
ओ मजदूर !!

दिसम्बर सन् १९२३।

हाहाकार

निर्दय पापी प्लेग कहीं है पाँव पसारे,
कालाज्वर ही कहीं डालता है संहारे;
हैजे ने ही कहीं हज्म कर लिए हजारों,
धर धर नाना रूप मृत्यु फिरती दिशि चारों।
दुर्बल जन पर ही अहो-
पड़ती दैवी मार है!
नगर नगर में मच रहा,
भीषण हाहाकार है!

(२)

शून्य घरों के बन्द दरों पर लटके ताले,
करुण कथा कह रहे हाँफ कर जीभ निकाले;
रहने वाले कहाँ गए कुछ नहीं खबर है,
दिया जलाए, यहाँ न कोई ऐसा नर है।
है नौबत बजती रही-
कभी यहाँ, वह द्वार है।
अब यह नौबत हो रही,
घर घर हाहाकार है!

(३)

सूखा ही पड़ गया कहीं है नहीं बरसता,
हा! हा! चातक-कृषक बूँद के लिए तरसता;
बरसा मूसलधार कहीं पानी ही पानी,
बहिया में बह गए, न घर की रही निशानी।
कुछ डूबे, कुछ बच गए,
तितर-बितर परिवार है।
ग्राम-ग्राम में मच रहा-
भीषण हाहाकार है!

(४)

रोती विधवा कहीं, पछाड़ें माँ खाती है,
पत्थर की भी जिन्हें देख फटती छाती है;
अन्धे पितु का लकुट पुत्र प्राणों से प्यारा?
जीवन का सर्वस्व अचानक स्वर्ग सिधारा।
इन दुखियों के हेतु तो,
सूना सब संसार है।
घर-घर में यों मच रहा,
भीषण हाहाकार है!

(५)

यह बच्चा दुधमुहाँ मातु-पितु-हीन बिचारा,
अति मलीन, तन छीन फिर रहा दर-दर मारा;
अब न सहारा कहीं है न रखवाला कोई,
मर भी जाए, नहीं पूछनेवाला कोई।
"रोटी दो भुक्खी लगी"-
करता यही पुकार है।
इस नन्हें से प्राण का,
कैसा हाहाकार है!

(६)

अब न दिखाती कहीं झुकी फूलों से डाली,
कहाँ गईं कोकिलें मस्त हो गानेवाली?
लाले की है कहाँ लहलहाती वह क्यारी?
उजड़ी ये किस भाँति हाय! फूली फुलवारी?
क्या न यहाँ फिर आयगी?
अब वह कहाँ बहार है?
पत्ती-पत्ती कर रही,
भीषण हाहाकार है!

कलकत्ता-कविसम्मेलन
सन् १९२६।